हमारे वजूद और मानव सभ्यता के विकास के लिए हैं हमारी क्रांतियाँ : तैंतालीसवाँ न्यूज़लेटर (2024)

अपनी ज़मीन से बेदख़ल लोग, 1960
साभार : अमरुस नतलस्य, सदस्य, **Lekra**, इंडोनेशिया का एक क्रांतिकारी सांस्कृतिक संगठन

प्यारे दोस्तो,

ट्राईकॉन्टिनेंटल : सामाजिक शोध संस्थान की ओर से अभिवादन।

अगले साल, इंडोनेशिया के बांडुंग में 1955 में हुए एशियाई-अफ्रीकी सम्मेलन की सत्तरवीं वर्षगाँठ है। इस सम्मेलन में बाईस अफ्रीकी और एशियाई देशों के शीर्ष नेताओं ने हिस्सा लिया था। डच उपनिवेशवाद के ख़िलाफ़ लड़ाई का नेतृत्व करने वाले इंडोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्णो (1901-1970) ने सम्मेलन का उद्‌घाटन जिस **भाषण** से किया उसका शीर्षक था 'एक नया एशिया और नया अफ्रीका बनाया जाए!' इस भाषण में उन्होंने इस बात पर दुख व्यक्त किया कि इंसान की तकनीकी और वैज्ञानिक तरक्की के बावजूद राजनीति की दुनिया में अब भी अराजकता है। इस बात को सत्तर साल हो चुके हैं (यह लगभग वैश्विक जीवन प्रत्याशा दर है)। उस समय जिसे बांडुंग भावना कहा गया था उसका बहुत कुछ पाया-गँवाया जा चुका है। इंसान अब भी अपनी ताक़त को पहचान नहीं पाया है।

अफ्रीका और एशिया के उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलनों के दौरान वहां की जनता को तथा हिरोशिमा और नागासाकी के लोगों को जिस दावानल में धकेला गया था उससे एक डर पैदा हो गया। सुकर्णो ने कहा, 'इंसान की ज़िंदगी को डर ने बर्बाद कर दिया है और कड़वाहट से भर दिया है। भविष्य का डर, हाइड्रोजन बम का डर, विचारधाराओं का डर'। सुकर्णो ने चेताया कि यह डर किसी भी हथियार से ज़्यादा खतरनाक है क्योंकि यह मनुष्य से 'बेवकूफ़ी भरे, बिना सोचे-समझे और खतरनाक काम करवाता है'। उन्होंने कहा, ' जो भी हो, हमें इस डर को अपने ऊपर हावी नहीं होने देना है, क्योंकि डर एक

तेज़ाब है जो इंसान से अजीब काम करवाता है। हमें उम्मीद और निश्चय से आगे बढ़ना है, हमें आदर्शों और हाँ, सपनों के सहारे आगे बढ़ना है!'

टोटम, टोटम, आई.एम, जिरना (इंडोनेशिया), 2021

बांडुंग सम्मेलन के अजेंडे में निम्नलिखित मुद्दे थे:

1. उपनिवेशवाद का अंत और संयुक्त राष्ट्र सहित अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था को लोकतांत्रिक बनाना।
2. नव उपनिवेशवादी आर्थिक ढाँचे को समाप्त करना, जो कभी उपनिवेश रह चुके राष्ट्रों को दूसरों पर निर्भर बनाता है।.
3. वे सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्थाएँ जो घृणित भेदभाव – खासतौर से नस्लभेद – को बढ़ावा देती हैं, उनमें आमूल चूल परिवर्तन किया जाना और आपसी समझ और अंतर्राष्ट्रीय एकजुटता पर आधारित वैश्विक समाज की स्थापना।

50 के दशक के अंतिम सालों से लेकर 80 के दशक के शुरुआती सालों तक 'बांडुंग भावना' ही तीसरी दुनिया के संघर्षों व आंदोलनों का आधार बनी रही और इस दौरान कई सफलताएँ भी मिलीं जैसे उपनिवेशवाद और नस्लभेद का अवैध घोषित होना तथा साथ ही एक **नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था** के निर्माण के प्रयास। लेकिन 80 के दशक में कर्ज़ के संकट और अंततः सोवियत संघ के विघटन से इस तीसरी दुनिया की परियोजना ने दम तोड़ दिया। इस विघटन की शुरुआत अक्टूबर 1981 में मेक्सिको के कांकुन में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और विकास पर एक मीटिंग से हुई जिसमें **ब्रांट** रिपोर्ट पर चर्चा हुई। इस मीटिंग में कोई ठोस नतीजा नहीं निकला और इसके बाद 1982 में मेक्सिको विदेशी कर्ज़ के चलते दिवालिया हो गया।

बांडुंग सम्मेलन के पचास साल बाद 2005 में इंडोनेशिया में नवासी देशों के प्रतिनिधि एशियाई-अफ्रीकी सम्मेलन, 2005 में शामिल हुए। यहाँ उन्होंने नई एशियाई-अफ्रीकी रणनीतिक साझेदारी (एनएएएसपी) का घोषणापत्र तैयार किया, लेकिन न तो इस मीटिंग पर ज़्यादा चर्चा हुई और न ही **'अंतर्राष्ट्रीय समुदाय'** ने इसे गंभीरता से लिया। इंडोनेशिया हाल ही में 1965 से 1998 के निरंकुश शासन से उबरा था, जो एक तख़्तापलट के बाद स्थापित किया गया था, फिर 1998 में यह नवउदारवादी नीतियों की भेंट चढ़ गया जिन्होंने उसे संयुक्त राज्य अमेरिका (यूएस) पर निर्भर बना दिया था। 2005 का सम्मेलन इंडोनेशिया की जिस सरकार ने करवाया था, उसमें वे ताक़तें भी मौजूद थीं, जिन्होंने 1965 में सुकर्णो के खिलाफ ख़ूनी तख़्तापलट में हिस्सा लिया था। यह सम्मेलन न तो 1955 के प्रथम सम्मेलन को याद करने का उचित तरीक़ा था और न ही ग्लोबल दक्षिण के लिए एक नए अजेंडे की कल्पना करने का। इससे दो साल पहले यूएस ने इराक़ के खिलाफ एक बड़ी और ग़ैरक़ानूनी जंग छेड़ दी थी, इससे पहले वो ऐसा ही अफ़ग़ानिस्तान के साथ भी कर चुका था, और उस समय यह आभास हो रहा था कि दुनिया में यूएस का एकध्रुवीय वर्चस्व अनिश्चितकाल तक जारी रहेगा। इंडोनेशिया और ग्लोबल दक्षिण की दूसरी शक्तियाँ यूएस को चुनौती देने के लिए तैयार नहीं थीं। इसलिए 2005 के सम्मेलन में जिस नई एशियाई-अफ्रीकी रणनीतिक साझेदारी की घोषणा हुई थी वह बांडुंग प्रोजेक्ट के आदर्शों का खोखला **दोहराव** थी, जिसमें कोई ख़ास संशोधन नहीं किए गए थे इसलिए इसके प्रति कोई विशेष उत्साह भी नहीं दिखा।

1955 और 2005 दोनों ही दौर से आज तक बहुत कुछ बदल गया है। इन परिवर्तनों को समझने के लिए हमने चीन के एक सबसे महत्त्वपूर्ण वामपंथी विचारक वांग हुए का रुख किया, जिनकी खुद की समझ 1949 की चीनी क्रांति और बांडुंग भावना की देन है। हमारे नवीनतम डोसियर **The Twentieth Century, The Global South, and China's Historical Position** [बीसवीं सदी, ग्लोबल दक्षिण और चीन की ऐतिहासिक स्थिति] में वांग हुए ने इस बात पर ज़ोर दिया है कि चीन और ग्लोबल दक्षिण के इतिहास को उनकी अपनी विशिष्ट स्थितियों के आधार पर पढ़ने की ज़रूरत है, न कि पश्चिम के संदर्भ में, जैसा कि होता आया है। ज़ार के शासन के खिलाफ हुई अक्टूबर क्रांति के एक सौ सात साल, चीनी क्रांति के

पचहत्तर साल और बांडुंग सम्मेलन के लगभग सत्तर सालों बाद आज चीन और ग्लोबल दक्षिण के दूसरे बड़े देश ख़ुद को दुनिया में एक प्रभावशाली ताक़त के रूप में स्थापित कर रहे हैं। इस परिस्थिति में वांग हुए का विश्लेषण हमें घटनाओं की सतह के नीचे देखने और चीन तथा ग्लोबल दक्षिण के उत्थान के गहन सैद्धांतिक कारणों को सामने रखने में मदद करता है।

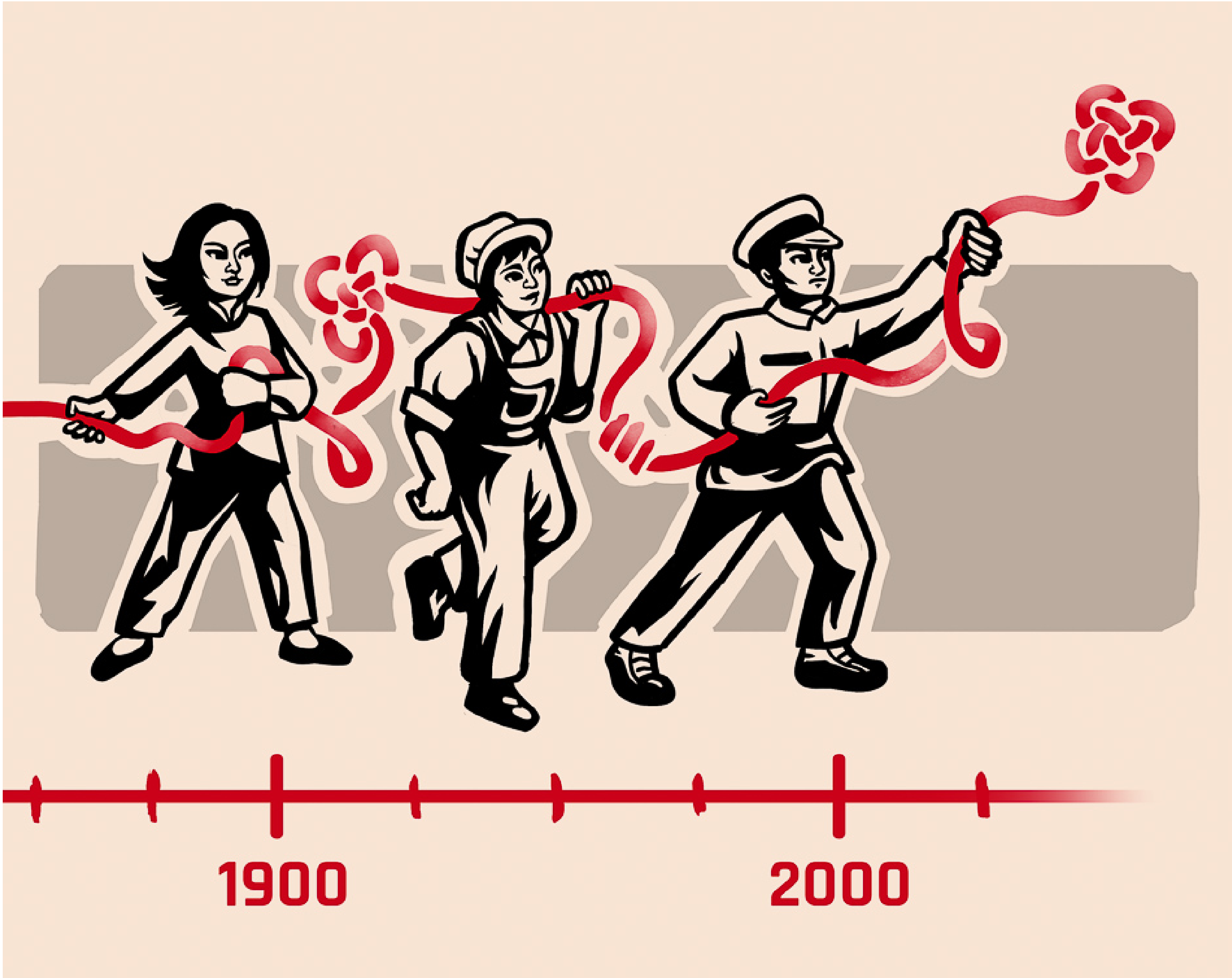

वांग हुए के इस बेहतरीन सैद्धांतिक लेख में तीन ख़ास बिंदु हैं, जो एक नए बांडुंग प्रोजेक्ट के निर्माण की तलाश में लगी दुनिया के लिए अहम हैं:

1. **हाशिये की क्रांतियाँ-** वांग हुए लिखते हैं कि आधुनिक दुनिया दो तरह की वर्ग-आधारित क्रांतियों की शृंखला से निकली है। पहली, बुर्जुआ उदारवादी क्रांति की शृंखला जो 1789 में हुई फ्रांसीसी क्रांति के बाद शुरू हुई। दूसरी, सर्वहारा, उपनिवेशवाद विरोधी, समाजवादी क्रांति की शृंखला जो 1911 की चीनी क्रांति से शुरू हुई। इस दूसरी शृंखला ने फ्रांसीसी क्रांति की अपेक्षा 1871 के **पेरिस कम्यून** से ज़्यादा प्रेरणा ली। इस दूसरी शृंखला की क्रांतियाँ हुईं हाशिये पर धकेल दिए गए इलाकों में, उपनिवेशों में और 'भूख से जर्जर दुनिया' में (जैसा कि पिएर पाओलो पासोलिनी ने अपनी 1964 में लिखी कविता 'बांडुंग नायक' में लिखा)। इस 'भूख से जर्जर दुनिया' में क्रांतियाँ हिस्सा बनीं एक लंबी प्रक्रिया का, जिसने सामंती विरासत से लोहा लिया, उत्पादक शक्तियों का निर्माण किया और जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी एक समाजवादी समाज की स्थापना की कोशिश कर रही है। जबकि भरपेट सोई दुनिया में कोई क्रांति नहीं हुई।
2. **हाशिये के लिए नए सिद्धांत-** वांग हुए ने उन शब्दों पर ग़ौर किया जो चीन की क्रांतिकारी प्रक्रिया के वर्णन में इस्तेमाल होते हैं। उन्होंने पाया कि जो कुछ शब्द दूसरे देशों (यूरोप के राजनीतिक इतिहास, मार्क्सवाद, अक्टूबर क्रांति इत्यादि)

से 'उधार' लिए गए वे चीन की अपनी क्रांति के बाद हुई ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर ही विकसित किए गए। यही अनुभव दूसरी क्रांतियों के भी रहे चाहे क्यूबा में हो या वियतनाम में। वांग कहते हैं कि जो सिद्धांत उधार भी लिए गए थे उन्हें भी वैसे का वैसा लागू नहीं किया। वांग कहते हैं कि ये विचार एक 'राजनीतिक विस्थापन' की प्रक्रिया से होकर गुज़रते हैं। चीन के क्रांतिकारी आंदोलन ने 'जनयुद्ध' और सोवियत' जैसे शब्द उधार लिए लेकिन चीन की जनता का युद्ध और **चिआंगशी सोवियत** (1931-1934) उन घटनाओं की छाया प्रतियाँ नहीं हैं जिन्होंने इन शब्दों को जन्म दिया। अलग सांस्कृतिक दुनिया और कभी-कभी अलग समय में पनपे इन अनुभवों से ही सिद्धांत समृद्ध होते हैं और नए स्वरूप पाते हैं।

3. **उत्तर महानगरीय युग-** वांग हुए का मत है कि हम सिर्फ़ उत्तर उपनिवेशवादी युग में नहीं बल्कि उत्तर महानगरीय युग में भी हैं। इस उत्तर महानगरीय स्थिति का अर्थ है कि भूतपूर्व 'कृषि प्रधान देश' अब धीरे-धीरे दुनिया के विकास, समृद्धि और संस्कृति का केंद्र बन रहे हैं। वांग हुए कहते हैं कि चीन और ग्लोबल दक्षिण ही इस परिवर्तनकाल को 'लाने वाली युगांतकारी शक्तियाँ' थे। फिर भी यह परिवर्तन अभी पूरा नहीं हुआ है। वित्त, संसाधनों, विज्ञान और तकनीक पर तो पश्चिम का नियंत्रण कमज़ोर पड़ा है लेकिन सैन्य शक्ति और सूचना पर नहीं। यह भूतों की तरह मँडराती हुई सैन्य शक्ति दुनिया को **प्रलयकारी विनाश** की धमकी देती रहती है ताकि महानगरीय या कुछ चुनिंदा देशों का दबदबा और ताक़त बरकरार रहे।

सबरा और शतीला नरसंहार, दीया अल-अज़्ज़वी (इराक़), 1982-83

एक नए बांडुंग तक का सफ़र शुरू हो चुका है, लेकिन इसे मंज़िल तक पहुँचने में अभी वक़्त लगेगा। आख़िर जब हम उत्तर महानगरीय दुनिया को सही से समझ लेंगे तब हम विकास के एक नए सिद्धांत को विकसित कर पाएंगे और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की एक नए समझ को भी। तब किसी विवाद को सुलझाने के लिए हाथ सबसे पहले बंदूक की तरफ नहीं बढ़ेगा।

2016 में लीबियाई कवयित्री और एक बाल पत्रिका की संपादक हवा गमोदी ने बताया कि क़त्लेआम और तबाही झेल चुकी जगह पर कविता क्या कर सकती है :

> दुनिया बन चुकी है एक क़ब्रिस्तान
> सूरज तो उगता है फिर भी
> हवा किसी लड़की के गाल सहलाती ही है
> समंदर ने भी कहाँ बिसराई अपनी नीलिमा
> अबाबील* मुझे सुनाते हैं अपने परों में छिपी
> मेरे बचपन की कहानी

> और कहीं एक लड़का अपने माशूक के बोसे की उम्मीद लिए बैठा है
>
> [*एक तरह का पक्षी]

तबाही के मंज़र के एक दूसरे पहलू को बयां करने वाले ये ख़ूबसूरत रूपक, ये तस्वीरें उकेरी हैं एक ऐसी शायरा ने जिसने देखा है भूतों पर निशाना साधे गिरते बम और चलती बंदूकें लेकिन जिनसे मारे जाते हैं बच्चे। वे आगे कहती हैं *‘[illegible]’*।

एक नज़र से देखा जाए तो इन न्यूज़लेटरों (1 मार्च 2018 से अब तक हम 348 प्रकाशित कर चुके हैं) का मूल तत्त्व यही है : *[illegible]*।

सस्नेह,

विजय